तत्त्वार्थकी दिगम्बर टीकाओंमें आगम और निर्ग्रन्थताकी चर्चा

दलसुख मालवणिया
ला० द० भारतीय विद्यामन्दिर, अहमदाबाद

तत्त्वार्थसूत्र ऐसा ग्रन्थ है जो प्राचीन है और उसकी टीकाएँ कालक्रमसे लिखी गई है। अतएव इस कालक्रममें आगम और निर्ग्रन्थताकी धारणाओंमें किस प्रकार परिवर्तन हुआ तथा इस आधार पर श्वेताम्बर दिगम्बर मतभेद किस प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ता गया, इसके जाननेके लिये ये टीकायें उत्तम साधन हैं। यहाँ तत्त्वार्थकी पूज्यपादसे लेकर श्रुतसागर तककी दिगम्बर-टीकाओंके आधारसे इस प्रश्नकी चर्चाकी जाती है जिससे जैनागमोंके प्रामाण्य और उनके विच्छेदके प्रश्नके विषयमें प्रकाश मिलेगा और श्वेताम्बर-दिगम्बर-सम्प्रदायके विषयमें अन्य जानकारी भी मिलेगी। यह सामग्री एकत्र करना इसलिये जरूरी है कि अब तक श्वेताम्बर-दिगम्बर-सम्प्रदायका पूरा इतिहास हमारे समक्ष आया नहीं है।

यहाँ मैंने एकादशजिने (९-११) और ऐसे अन्य सूत्रोंकी व्याख्याकी चर्चा नहीं की है। इस लेखका उद्देश्य सीमित है। अतएव सम्पूर्ण सामग्री देना अभिप्रेत नहीं। केवल साधक रूपसे दोनों सम्प्रदायोंके बीचकी खाई किस तरह बढ़ी है, यह दिखाना अभिप्रेत है। केवलि कवलाहार यदि न माना जाय, तो तदनुसार अन्य मान्यताको भी संशोधित करना पड़ता है। उसी कोटिमें एकादश जिने जैसे सूत्र आते हैं। इन सब मतभेदकी चर्चा अन्य विद्वानोंने भी की है, अतएव उसे यहाँ दोहराना अभिप्रेत नहीं है।

तत्त्वार्थ सूत्र १.२० में **श्रुतं मतिपूर्वं द्वयं नैकद्वादशभेदम्**—इतना ही कहा था। इससे स्पष्ट है कि तत्त्वार्थसूत्रकारको आगमके मूल दो भेद—अंग और अंगबाह्य मान्य थे। अंगके बारह और बाह्यके अनेक भेद संमत थे। स्पष्ट है कि उमास्वाति (भी) तक आगमकी यह स्थिति थी और उनके समय तक आगमके अस्तित्त्वकी या प्रामाण्यके विषयमें कोई मतभेदकी सूचना हमें प्राप्त नहीं होती। उमास्वाति दिगम्बर हों या श्वेताम्बर, यह विवादका विषय हो सकता है किन्तु उनका तत्त्वार्थसूत्र उभयमान्य प्रमाण ग्रन्थ है, यह तो निश्चित है। यही कारण है कि दोनों परम्पराओंने इसपर टीकायें लिखी हैं और जहाँ परम्परा भेदसे मालूम हुआ, वहाँ टीकाकारोंने अपने मनकी पुष्टि करनेका प्रयत्न भी किया है। टीकाकारोंमें मतभेद हो सकता है किन्तु एक बात ध्यान देने योग्य है कि उक्त आगम—विषयक सूत्रकी व्याख्यामें कोई मतभेद नहीं है। इससे इतना तो सिद्ध होता ही है कि आगमके अंग-अंगबाह्य भेद और उसके सूत्र सूचित उपभेदके विषयमें दोनों परम्पराएँ एकमत हैं।

तत्त्वार्थकी भाष्यटीकाके स्वोपज्ञ होनेमें विवाद है, फिर भी अनेक विद्वान् उसे सर्वार्थसिद्धिसे प्राचीन मानते हैं। उसमें अंगबाह्योंकी गिनती है। सामायिक, चतुर्विंशतिस्तवं, वंदनं, प्रतिक्रमणं, कायव्युत्सर्गं, प्रत्याख्यानं, दशवैकालिकं, उत्तराध्यायाः, दशाः, कल्पव्यवहारौ, निशीथं, ऋषिभाषितानि और अन्तमें एव-मादि लिखा है तो अन्य भी कुछ थे, यह फलित होता है। अंगप्रविष्ट में आचारको लेकर दृष्टिवाद तक बारह अंग गिनाये हैं। उसमें दृष्टिवादके विच्छेदकी कोई सूचना नहीं है। यह भी स्पष्टीकरण है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान्‌ने जो प्रवचन किया, उसको आधार बनाकर गणधरोंने अंगोंकी रचना की। अंगबाह्यकी रचना गणधरके बादके आचार्योंने की।

सर्वार्थसिद्धिमें बारह अंग नामतः गिनाये हैं और अंगबाह्यमें दशवैकालिक और उत्तराध्ययनके नामतः गिनाकर आदि कह दिया है। वहाँ दृष्टिवादके पाँच भेद नामतः गिनाकर पूर्वतीके चौदहों भेदोंको नामतः गिनाया है। वक्ताके विषयमें वही बात कही है जो भाष्यमें निर्दिष्ट है और विशेषमें अंगके प्रामाण्यकी सूचना दी है--'तत् प्रमाणं, तत्प्रामाण्यात्' और दशवैकालिक आदिके भी प्रामाण्यको, 'तत् प्रमाणमर्थतस्तदेवेदमिति क्षीरार्णवजलं घटगृहीतमिव' बताया है। इससे स्पष्ट है कि दशवैकालिक आदिका भी प्रामाण्य पूज्यपादको मान्य है। आचार्य पूज्यपादने आगमविच्छेदकी कोई चर्चा नहीं की।

लेकिन आगमोंमें प्रतिपादित विषयोंको लेकर परम्परा भेद हो गया था, यह आचार्यपूज्यपादके निम्न कथनसे स्पष्ट होता है: "कवलाभ्यवहारजीविनः केवलिनः, इत्येवमादिवचनं केवलिनामवर्णवादः। मांसभक्षणाद्यनवद्याभिधानं श्रुतावर्णवादः"। ६–१३।

स्पष्ट है कि श्वेताम्बरोंकी आगमवाचनामें केवलीके कवलाहारका प्रतिपादन है। उसे केवलीका अवर्णवाद पूज्यपादने बताया है और श्वेताम्बरोंकी आगमवाचनामें मांसाशनकी आपवादिक सम्मति दी गई है, उसे भी श्रुतावर्णवाद आचार्यने माना। इस प्रकार हमें आगमवाचनाके विषयमें मतभेद होनेकी सूचना तो पूज्यपादने दी है किन्तु दशवैकालिक आदि या आचारांग आदिके विच्छेदकी कोई सूचना नहीं दी। स्पष्ट है कि वाचनामें मतभेदका प्रारम्भ है, किन्तु उस मतभेदके कारण आगमको विच्छिन्न मानना अभी शुरू नहीं हुआ है।

परिग्रहके कारण पुलाक आदि विरतोंको निर्ग्रन्थ मानना या नहीं, इस प्रश्नके विषयमें भी पूज्यपाद स्पष्ट हैं—"त एते पंचापि निर्ग्रन्थाः चारित्रपरिणामस्य प्रकर्षाप्रकर्षभेदे सत्यपि नैगमसंग्रहादिनयापेक्षया सर्वेपि ते निर्ग्रन्था इत्युच्यन्ते" (९–४६)। स्पष्ट है कि आधुनिक कालमें श्वेताम्बर साधुको श्रवक-उपासक कोटिमें जो रखा जाता है, वंसा मत पूज्यपादका नहीं था। यह परिस्थिति बादमें घटित हुई है। इसकी प्रतीति हमें तत्त्वार्थके अग्रिम सूत्र (९–४७) की सर्वार्थसिद्धिसे भी होती है। वहाँ पुलाक और वकुशकी सामायिक और छेदोपस्थापन चारित्र पूज्यपादने भाष्यकी तरह ही माना है और पूज्यपादने भाष्यके समान ही "भावलिंगं प्रतीत्य सर्वे पंच निर्ग्रन्थाः लिंगिनो भवन्ति, द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्या।" (९–४७) यह स्वीकार करके परिग्रहधारीको भी भावलिंगीश्रमण निर्ग्रंथ तो माना ही है। स्पष्ट है कि अभी यह मतभेद तीव्र नहीं हुआ जिससे दो सम्प्रदाय स्पष्टरूपसे भिन्न ही माने जावें।

आचार्य अकलंकने आचारांग आदि बारह अंगोंके क्या विषय हैं, इसका विस्तृत वर्णन किया है। उसे पढ़कर यह लगता है कि उनके सम्मुख जो आगम थे, उनकी वाचनामें आज उपलब्ध श्वेताम्बर आगमोंकी वाचनासे पर्याप्त मात्रामें भेद है। उससे यही कल्पना हो सकती है कि आगमोंकी सुरक्षाका और नई नई रचना करनेका जिस प्रकार श्वेताम्बर परम्परामें प्रयत्न हुआ, वैसे कई और भी प्रयत्न हुए होंगे। एक यह भी कल्पनाकी जा सकती है कि जिस प्रकार आधुनिक कालमें अनुपलब्ध दृष्टिवादके विषयोंकी चर्चा परम्परासे या तत्तत् देशोंके नामकरणको लेकर प्रतिपाद्य विषयकी चर्चा की जाती है, वैसे ही आचार्य अकलंकने भी किया हो। लेकिन एक बात निश्चित है। अकलंकने भी राजवार्तिकमें आगमके विच्छेदकी कोई सूचना नहीं दी है।

एक ध्यान देनेकी बात आचार्य अकलंकने कही है। यह अंगबाह्यके कालिक-उत्कालिक भेदकी है। ऐसे ही भेद श्वेताम्बर-परम्परामें भी प्रसिद्ध हैं और नंदी आदि सूत्रोंमें उल्लिखित हैं। सर्वार्थसिद्धिमें इन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भेदोंका कोई उल्लेख नहीं, अतएव हो सकता है कि यह विभाजन पूज्यपाद और अकलंकके बीचके कालमें हुआ हो। श्वेताम्बरोंमें भी अंगबाह्यके ये भेद प्राचीन आगमोंमें दिखाई नहीं देते। नंदी (९२-९४), अनुयोग (४) और पाक्षिक सूत्रमें ये भेद किये गये हैं। इससे भी फलित होता है कि अंगबाह्यके ये भेद उमास्वामि तक तो विशेषरूपसे प्रसिद्ध नहीं थे। संभव यह है कि सामायिक आदिको मिलाकर जब तक स्वतंत्र एक आवश्यक सूत्र माना नहीं गया, तब तक ये भेद भी प्रसिद्धिको प्राप्त नहीं हुए। यही कारण है कि तत्त्वार्थभाष्यमें सामायिक आदि स्वतंत्र ग्रन्थ माने गये हैं और इसी परम्पराका अनुसरण दिगम्बर-मान्य धवला आदिमें भी देखा जाता है। स्पष्ट है कि अनुयोगद्वारकी रचनाके पूर्व ही कभी ये कालिक-उत्कालिक भेद प्रसिद्ध हुए और उन्हें सर्वप्रथम दिगम्बर परम्परामें अकलंकने अपनाया है।

अंगबाह्यमें आचार्य अकलंकने 'तद्भेदाः उत्तराध्ययनादयोऽनेकधा' कहकर चर्चाको समाप्त किया है। स्पष्ट है कि उनके सम्मुख अंगबाह्यमें उत्तराध्ययनका विशेष महत्त्व है। अंग-अंगबाह्यके विच्छेदको भी कोई चर्चा अकलंकने नहीं की। इससे यह परिणाम तो निकल ही सकता है कि उन आगमोंकी कोई वाचनाको वे विद्यमान मानते थे चाहे वह वाचना आज उपलब्ध श्वेताम्बर वाचनासे भिन्न ही क्यों न हो। सर्वथा भिन्न होनेकी सम्भावना भी कम ही है। अधिकांश समान हो, तो कोई आश्चर्य नहीं।

पूज्यपादने केवलि आदिके अवर्णवादकी जो चर्चा की है, उससे बादकी भूमिका आचार्य अकलंकमें देखी जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैन आगमके भाष्यादि टीका ग्रन्थ पूज्यपादके समक्ष नहीं आये किन्तु अकलंकने देखे हैं। यही कारण है कि उन्होंने अवर्णवादकी चर्चामें कुछ नई बातें भी जोड़ी हैं। तत्त्वार्थ-सूत्रकी (६-१३) व्याख्यामें आचार्य अकलंक कहते हैं, "पिण्डाभ्यवहारजीविनः केवलदशा निर्हरणाः अलाबू-पात्रपरिग्रहाः कालभेदवृत्तज्ञानदर्शनः केवलिन इत्यादिवचनं केवलिष्ववर्णवादः।" सर्वार्थसिद्धिमें तो केवला-हारका निर्देश कर आदि पद दे दिया था, तब यहाँ वस्त्र, पात्र और ज्ञानदर्शनके क्रमिक उपयोगको देकर आदि वचन दिया है। स्पष्ट है कि अब वस्त्र और पात्रको लेकर जो विवाद दिगम्बर-श्वेताम्बरोंमें हुआ है, वह भी निर्देशयोग्य माना गया और निर्युक्ति और भाष्यमें ज्ञानदर्शनके क्रमिक उपयोगकी जो सिद्धसेनके विरोधमें चर्चा है, वह भी उल्लेख योग्य हो गई। अब दोनों सम्प्रदायोंका मतभेद उभर आया है—ऐसा कहा जा सकता है। इसी प्रकार श्रुतावर्णवाद प्रसंगमें भी अन्य बातें निर्देश योग्य हो गईं : "मांसमत्स्यभक्षणं मधु-सुरापानं वेदनार्दितमैथुनोपसेवारात्रिभोजनमित्येवमादि।" स्पष्ट है कि ये आक्षेप भाष्यको लेकर ही अर्थात् श्वेताम्बरों द्वारा मूलकी जो व्याख्या की जाने लगी, उससे असंमति बढ़ती गई।

संघके अवर्णवादको पढ़कर वह अवर्णवाद जैनोंके द्वारा ही किया गया हो, ऐसा सर्वार्थसिद्धिसे फलित नहीं होता। सर्वार्थसिद्धिमें लिखा है, "शूद्रत्वाशुचित्वाद्याविर्भावन," इससे यह आक्षेप अजैनों द्वारा ही किया जा सकता है, यह स्पष्ट है। किन्तु आचार्य अकलंकने जो यह लिखा, "एते श्रमणाः शूद्राः अस्नानमला-दिग्धांगाः अशुचयो दिगम्बरा निरपत्रपाः" उससे स्पष्ट होता है कि यह आक्षेप करनेमें श्वेताम्बर भी शामिल हैं। प्रतीत होता है कि दोनों सम्प्रदायोंकी खाई उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। फिर भी, इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि समग्रभावसे आगमविच्छेद या उसके अप्रामाण्यकी चर्चा अकलंकने की नहीं की। इससे इतना तो कहा जा सकता है कि मूल आगमोंको लेकर अभी विवाद खड़ा नहीं हुआ होगा।

पुलाकादिके विषयमें पूज्यपादने (९-४६) उनको श्रावक नहीं माना जा सकता, निर्ग्रन्थ ही वे कहे जायेंगे, यह स्पष्ट किया था और कहा था, "गुणभेदादन्योन्यविशेषेऽपि नैगमादिनयव्यापारात् सर्वेपि हि भवन्ति", किन्तु आचार्य अकलंकने इस चर्चा को और स्पष्ट किया कि ये गुणहीन हैं, अतएव निश्चयनयसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्ग्रन्थ नहीं हैं किन्तु संग्रहविनयसे हैं, "यद्यपि निश्चयनयापेक्षया गुणहीनेषु न प्रवर्तते तथापि संग्रहव्यवहारनयविवक्षावशात् सकलविशेषसंग्रहो भवति।" जिस ग्रन्थकी टीका अकलंक कर रहे हैं, उसके विरुद्ध तो वे जा नहीं सकते थे, अतएव निर्ग्रन्थ कहनेमें उन्हें कोई बाधा नहीं किन्तु स्पष्ट किया कि ये नाम मात्रके निर्ग्रंथ हैं। उनमें निर्ग्रन्थके गुण नहीं। सर्वार्थसिद्धिमें गुणका तारतम्य मानकर पुलाकादिको निर्ग्रन्थ माना जबकि यहाँ केवल नाममात्रसे माना है और भग्नव्रत निर्ग्रन्थके बाह्य रूपको भी लेकर उन्हें श्रावक शब्दवाच्य नहीं माना जा सकता, यह भी अकलंकने कहा है, "यदि भग्नव्रतेऽपि निर्ग्रन्थशब्दो वर्तते, श्रावकेपि स्यादिति अतिप्रसंगः। नैष दोषः। कुतः? रूपाभावान् निर्ग्रन्थरूपाभावात्, निर्ग्रन्थरूपमत्र नः प्रमाणं, नच श्रावके तदस्ति, इति नातिप्रसंगः।"

यहाँ एक बात और ध्यान देना जरूरी है। पूज्यपादने मात्र इतना ही कहा था कि पुलाकादि व्रतोंका पालन पूर्णरूपसे नहीं करते। इसी आधारपर अकलंकने भी पूज्यपादका अनुसरण ही किया है।

आचार्य विद्यानन्दने तत्त्वार्थश्लोकवार्तिकमें भी आगमके अंग-अंगबाह्यका प्रामाण्य स्वीकृत किया है (१२०–४) और "सत्यं श्रुतं सुनिर्णीतासंभवाद्बाधकत्वतः।" (१.२०–६५) इस अनुमानसे भी प्रामाण्य सिद्ध किया है और अन्तमें कहा हैं :

प्रोक्तभेदप्रभेदं तच्छ्रुतमेव हि तद्दृढम्।
प्रामाण्यमात्मसात्कुर्यादिति नश्चितयात्र किम्॥ १.२०.८३॥

तत्त्वार्थके उक्त दिगम्बर टीकाकारोंके मतसे आगमके आचारादि अंग्रप्रविष्ट और दशवैकालिक आदि अंगबाह्यका प्रमाण्य है, इतना तो सिद्ध होता ही है और इन टीकाकारोंने आगमविच्छेदकी कोई चर्चा भी नहीं की। इससे यह भी सिद्ध होता है कि वे अपने काल तक उनके अस्तित्वके विषयमें भी संदिग्ध नहीं थे। अर्थात् ही जिनग्रन्थोंको वे नामतः स्वीकार करते हैं। उनका अस्तित्व भी उनके काल तक निश्चित रूपसे था ही, विच्छेदका प्रश्न ही नहीं उठता।

आचार्य विद्यानन्दकी पुलाकादिकी चर्चामें स्पष्ट रूपसे वस्त्रादिकी चर्चाने स्थान पाया है। वहाँ मूर्च्छा और बाह्य वस्तुग्रहणके कार्यकारणकी चर्चा भी है और निर्ग्रन्थका बाह्यरूप यथाजात ही हो सकता है। अतएव वस्त्रधारी निर्ग्रन्थ नहीं कहे जा सकते। पुलाकादिको व्यवहारसे और निश्चयसे भी निर्ग्रन्थ कह सकते हैं किन्तु वस्त्रधारीको नहीं, यह स्पष्टीकरण श्वेताम्बर-दिगम्बरके सम्प्रदायभेदको स्पष्ट रूपसे व्यक्त करता है। उन्होंने कहा हैं :

पुलाकाद्या मताः पंच निर्ग्रन्था व्यवहारतः निश्चयाच्चापि नैर्ग्रन्थ्य सामान्यस्याविरोधतः। वस्त्रादिग्रन्थसंपन्ना ततोऽन्ये नेति गम्यते—तत्त्वार्थश्लोक ९–४६, १।

"रत्नत्रयोपेतः श्रमणगणः संघः" (६–१३) यह व्याख्या संघकी पूज्यपादने की थी। अकलंकने भी यही व्याख्या मानी है। साथ ही, दिगम्बर मुनि अकेले भी विचरण करते हैं, इस दृष्टिसे समाधान भी किया है कि एक व्यक्तिका भी संघ हो सकता है। इसके लिए आधार भगवती आराधना (गा० ७१४) है। विद्यानंद भी यही कहते हैं। किन्तु श्रुतसागरने संघकी जो व्याख्या की है, वह है, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपात्राणां श्रमणानां, परमदिगम्बराणां गणः समूहः संघ उच्यते।' (६–१३) स्पष्ट है कि श्वेताम्बर मुनियोंके समुदायको संघ नहीं कहा जा सकता। केवलिके अवर्णवादके विषयमें श्रुतसागरने लिखा है, "केवलिनः किल केवलज्ञानिनः कवलाहारजीविनः, तेषां च रोगो भवति, उपसर्गश्च संजायते, नग्ना भवन्त्येव परं वस्त्राभरणमण्डिता दृश्यन्ते।" इत्यादि ६–१३। इससे इनकी श्वेताम्बर शास्त्रकी विशेष जानकारी प्रगट होती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतके अवर्णवादके विषयमें श्रुतसागरने लिखा है—"मांसभक्षणं, मद्यपानं, मातृस्वस्त्रादिमैथुनं जलगालने महापापमित्यादि" ६–१३। इसमें मातृमैथुन और जलगालनमें महापापकी जो बात लिखी है, उसके मूलकी तलाश करना जरूरी है। बहनके साथ मैथुनकी बात संभवतः युगलिक चर्चा लेकर है और ऐसी चर्चाका निर्देश जिनसेन आदिके दिगम्बर पुराणोंमें वर्णित नहीं है। श्वेताम्बर आगमों और पुराणोंमें है।

वस्त्रके विषयमें भगवती आराधनाके अनुसार अपवाद मानकर भी श्रुतसागरने श्वेताम्बरोंके विषयमें यह लिखा है, "अमुमेवाधारं गृहीत्वा जैनाभासाः केचित् सचेलत्वं मुनीनां स्थापयन्ति तन्मिथ्या, साक्षान्मोक्षकारणं निर्ग्रन्थलिंगमितिवचनात्। अपवादव्याख्यानं तु उपकरणकुशीलापेक्षया कर्तव्यम्" (६-४९)। स्पष्ट है कि अब श्वेताम्बर जैन नहीं किन्तु जैनाभासकोटिमें गिने जाने लगे थे। यहाँ इस प्रश्न पर भी विचार करना जरूरी है कि पूज्यपादसे लेकर श्रुतसागर तक किसीने भी आगमविच्छेदकी चर्चा क्यों नहीं की? मेरे विचारसे इसका कारण यह हो सकता है कि इन सभीने यह चर्चा तो की ही है कि आगम अनादि निधन है। श्वेताम्बर भी इसे मानते ही हैं। जब अनादि निधनका समर्थन किया और तत्तत्समयमें पुनः पुनः आगमोंका आविर्भाव स्वीकृत किया, तब आगमके विच्छेदकी चर्चा अप्रासंगिक ही होगी। यह दिगम्बर-परंपरामें, आगम विच्छिन्न हुए, ऐसा न कहकर आगमधर नहीं रहे, ऐसी भावनाको बल दिया है। अतएव आगम विच्छेदकी चर्चा पूज्यपादादि आचार्योंने उठाई न हो, यह संभव है। नंदीचूर्णिमें हम देखते हैं कि वहाँ इस विषयमें दो मत हैं—एक है, दुष्कालके कारण आगम विप्रनष्ट हुए और दूसरा है—आगमके अनुयोगधर विनष्ट हुए। दिगम्बर ग्रन्थोंमें श्रुतावतारकी चर्चामें आगमधरोंकी बात कही जाती है—यह प्रमाण है कि उनके मतमें आगमधरका विच्छेद मान्य हो, न कि आगमोंका। अतएव पूज्यपादादि आचार्य आगम विच्छेदकी चर्चा न करें, यह स्वाभाविक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org